भगवान महावीरजी

भगवान महावीर जैन धर्म के अंतिम तथा 24 वें तीर्थकर थे। जिनका जन्म से लगभग ईसा पूर्व 550 तत्कालीन जनपद के कुण्डपुर ग्राम में लिच्छवी राज सिद्धार्थ एवं माता तृशाला के गोद में हुआ था। जन्म के पूर्व माता 14 अति शुभ स्वप्न देखे थे।

बाल्यकाल से ही वर्धमान अत्यन्त तेजस्वी थे। एक बार एक मुनि की तत्व जिज्ञासा का समाधान वर्धमान के दर्शन मात्र से हो जाने के कारण इन्हें सम्मत्ति भी कहा जाने लगा। एक अन्य अवसर पर क्रीड़ारत बालकों पर एक विषधर सर्प ने आक्रमण किया। अन्य बालक भयभीत हो भाग गये, लेकिन बालक वर्धमान ने उसे वश में कर लिया। इसी तरह उन्होंने एक बार एक मदोन्मत्त हाथी को भी काबू में किया था।

श्रवेताम्बर परम्परा के अनुसार महावीर का विवाह हुआ था, तथा उनकी एक कन्या थी। लेकिन दिगम्बर-मान्यता के अनुसार महावीर का विवाह नहीं हुआ था। वे अन्तर्मुखी प्रकृति के थे तथा सदा आत्मचिन्तन में निमग्न रहा करते थे। वे अलपवय में गृहत्याग करना चाहते थे, लेकिन मातापिता के अनुरोध के अनुरोध पर उनके जीवित रहने तक उन्होंने ऐसा नहीं किया। उसके बाद तीस वर्ष की उम्र में अपने बड़े भाई नन्दीवर्धन की अनुमति से वे गृहत्याग कर परिव्राजक संन्यासी बन गये।

महावीर ने बारह वर्ष तक कठोर तपोम्य साधना की। प्रगाढ़ आत्म-तन्मयता के कारण उन्हें अपनी देह, वस्त्र, आहा आदि की सुध नहीं रहती थी। ऐसी स्थिति में उनका एकमात्र वस्त्र ने जाने कब शरीर से खिसक कर गिर गया। इन बारह वर्षों में वे आधे से अधिक का निराहार रहे तथा प्राकृतिक तथा अज्ञ मानवों द्वारा दिये गये अनेक कष्टों को उन्होंने निर्विकार भाव से सहन किया। वे अनेक अभावनीय

प्रतिज्ञाओं एवं मानसिक संकल्पों के साथ भिक्षा के लिये जाते लेकिन उनकी संकल्पशक्ति एवं सत्यप्रतिष्ठा के कारण अमानवीय परिस्थितियाँ यथार्थ हो उठती। अपनी बारह वर्षीय तपस्या के अन्त में उन्होंने मुण्डित-मस्तक, श्रृंखलाबद्ध राजकन्या के हाथों भोजन ग्रहन करने का मानसिक संकल्प किया। यह संकल्प राजा चेटक की कन्या चन्दना के द्वारा प्रदत्त भिक्षान्न से पूर्ण हुआ जो विचित्र परिस्थितियों में मस्तक-मुण्डित एवं श्रृंखलाबद्ध थी। चन्दना आगे चलकर महावीर के संन्यासिनी संघ की प्रथम साध्वी हुई।

पूर्ण ज्ञान अथवा केवल ज्ञान प्राप्त करने के बाद महावीर ने धर्मोपदेश प्रारम्भ किया। वेद-वेदांग में पारंगत गुण-शील-सम्पन्न इन्द्रमूर्ति गौतक नामक ब्राह्मण उनसे शास्त्रार्थ करने आया लेकिन उनका शान्त, सौम्य ज्ञानोद्दीप्त मुखमण्डल के दर्शन मात्र से वह उनका शिष्य बन गया। गौरतक के माध्यम से अपने ग्यारह गणधरों एवं असंख्य अनुयायियों को दिये गये भगवान महावीर के उपदेशों से जैनधर्म के द्वादशांक रूप शास्त्रों की रचना हुई। भगवान महावीर ने अपने उपदेश सभा समवसरण कहलाती थी तथा उसमें पशु-पक्षी से लेकर देवताओं तक सभी के लिये स्थान रहता था।

अन्धविश्वास छटा

सकडाल का पुत्र कुम्हार का काम करता था। वह बड़ा भाग्यवादी था। पुरूषार्थ उसकी दृष्टि में विशेष महत्त्व नहीं रखता था।

एक बार भगवान् महावीर उसके यहाँ रूके। महावीर को बात-बात में उसकी भग्यविदाता अच्छी न लगी। उन्होंने पूछा-'तुम्हारे यहाँ चाक पर मिट्टी के बर्तन बनाये जाते हैं? यह कैसे बनते हैं?

'नियतिवश इन बर्तनों को बनाने की प्रेरणा मिलती है।' कुम्हार बोला।

महावीर ने फिर पूछा-'तुम्हारे इन पके-पकाये बर्तनों को कोई तोड़ दे तो तुम क्या समझोगें?

'भाग्य में यही लिखा होगा तो ऐसा ही होगा।' सकडाल-पुत्र बोला।

'और तुम्हारी पत्नी से कोई दुराचरण करे तो?'' महावीर पूछने लगे।

यह सुनते ही कुम्हार क्रोध से भर उठा और बोला-'किसकी हिम्मत है जो ऐसा कर सके? कोई मेरी पत्नी की ओर आँख उठाकर देखे तो उसकी मैं अच्छी तरह खबर ले लूँगा।'

'लेकिन यह भी तो नियतिवश ही होगा। इसमें क्रोध करने की क्या बात है?'' महावीर ने कहा। बोला 'आप ठीक कहते हैं भगवान्! भाग्य पर अन्धविश्वास रखना मूर्खता है। जीवन में पुरूषार्थ ही प्रमुख है। वही भाग्य का निर्माता है।'

तप से बड़ा सत्य

भगवान् महावीर उधर से गुजर रहे थे। रास्ते में मिले एक ग्रामीण ने उनके चरणों पर गिरकर प्रणाम किया। उत्तर में अर्हत ने भी उसके चरणों पर मस्तक टेका।
ग्रामीण सकपकाया-बोला-आप तपस्या के भण्डार है, उस विभूति को मैंने नमन किया। पर मैं तो कुछ नहीं हूँ, मेरा नमन किस लिये।

अर्हत ने कहा-तेरे भीतर जो परम पवित्र आत्मा है, मैं उसी को देखता हूँ और नमता हूँ। मेरे 'तन' से तुम्हारा 'सत्य' बड़ा है।

महावीर ने साधु, साध्वी, पुरूश गृहस्थ भक्त (श्राविका) के एक चतुर्विध धमसंघ की स्थापना की जो आज भी विद्यमान है। 62 वर्ष की आयु में कार्तिक - कृष्ण अमावस्या अर्थात दीपावली के दिन नालन्दा के निकट पावापुरी ग्राम में उन्होंने देहत्याग किया।

भगवान महावीर के कुछ उपदेश:-

1- ये काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल तक दु:ख देनेवाले है, बहुत दु:ख और थोड़ा सुख देने वाले है, मुक्ति के विरोधी और अनर्थो की खान है।

2- खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर बहुत दु:ख को भी सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य काम जन दु:ख को सुख मानता है।

3- धर्म उत्कृष्ठ मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण है। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते है।

4- वास्तव में चरित्र ही धर्म है इस धर्म को शमरूप कहा गया है। मोह क्षोभ से रहित आत्मा का निर्मल परिणाम ही शम या शमता रूप है।

5- पर स्त्री का सहवास, जुआ खेलना, मघ, शिकार, वचनपरूषता, कठोर दण्ड तथा चोरी ये सात व्यसन है।

6- मोक्षावस्था का शब्दों में वर्णन संभव नहीं है क्योंकि वहाँ शब्दों की प्रवृति नहीं है। न वहाँ तर्क का ही प्रवेश है, क्योंकि वहाँ मानस व्यापार संभव नहीं है। मोक्षावस्था संकल्प -

विकल्पातीत है। साथ ही समस्त मल कलंक से रहित होने से वहाँ भी नहीं है। रागातीत होने के कारण सातवें नर्क तक की भूमि का ज्ञान होने पर भी वहाँ किसी प्रकार का खेद नहीं है।